83.

तित्थयर

जैन भवन

वर्ष ६ अंक ४ : अगस्त १९८२

बनारसी साड़ी

इण्डियन सिल्क हाउस

कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

Prakash Trading Company

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA 700001

Gram : PEARLMOON

Telephon : 22-4110
22-3323

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality Woollen Yarn/Carpet Yarn and Superior Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS
Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office
4 Mir Bhor Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office
The Bikaner Woollen Mills
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ६ : अंक ४

अगस्त १९८२

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७००००७

सूची

महावीर ने कहा था १०१

सामसुखाजी के प्रति

मेरा आकर्षण १०५

दर्शन और विज्ञान में आत्मा १०८

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र १२०

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या १२८

बाहुबली, भिलारी, जब्बलपुर

महावीर ने कहा था

[पूर्वानुवृत्ति]

ब्रह्मचर्य पालन में जो उद्यत है
वह पूर्वानुभूत
स्त्रियों के हास्य क्रीड़ा रति
दर्प और वित्रासन
स्मरण नहीं करता,
न ही उनका चिन्तन करता है।

ब्रह्मचर्य पालन में जो उद्यत है
वह पुष्टिकर आहार
ग्रहण नहीं करता
कारण वह कामना को वर्द्धित करता है।

बहु ईन्धन पूर्ण वन में
हवा से उत्तेजित होकर
दावाग्नि जैसे शान्त नहीं होती,
अपरिमितभोजी ब्रह्मचारी की
इन्द्रियाग्नि भी वैसेही शान्त नहीं होती,
अतः अपरिमित भोजन हितकारी नहीं।

जो श्रुति-सुखकर है
उसमें तुम्हारा मन
आग्रही न बने,
अतः कटु श्रवण के लिए
स्व को तैयार रखो।

इन्द्रिय विषयों में
सरागत्व-विरागत्व नहीं है,
उनके प्रति
अनुराग और विराग के वशीभूत होकर

मनुष्य इससे अनुरक्त
और विरक्त होता है।

जो सराग है
इन्द्रिय और मन के विषय
उसके दुःख के कारण होते हैं,
जिसके अनुराग-विराग नहीं
उसके वे दुःख का
कारण नहीं बनते।

स्त्रियों की देह, रूप-लावण्य की
जो कामना करता है
वह दुःख ही पाता है।
कारण जो देह, रूप-लावण्य की कामना करता है
वह किस प्रकार सुखी हो सकता है?
भोग के समय भी वह दुःख ही पाता है
जिसकी प्रस्तुति में भी
उसको दुःख ही पाना पड़ा था।

जो रूप की कामना करता है
वह अकाल में ही विनष्ट होता है।
दीप-शिखा से आकृष्ट होकर
जैसे पतंगा भागता है,
वह भी वैसे ही कामार्त होकर
मृत्यु की ओर भागता है।

जिसका रूप में अनुराग-विराग नहीं
उसे दुःख भी नहीं,
यद्यपि वह संसार में ही रहता है
फिर भी जल जैसे कमल-पत्र को
स्पर्श नहीं करता,
वैसे ही वेदना भी उसे
स्पर्श नहीं करती।

परिग्रह सम्बन्धी

जो ज्ञानी है
संयम रक्षा के लिए ही केवल वह
उपकरण द्रव्य रखता है।
कारण अपनी देह में भी
उसका ममत्व नहीं रहता।

कोई द्रव्य पास में रखना
परिग्रह नहीं है।
परिग्रह है उसमें ममत्व भाव।

रूप आँखों का विषय है—
जब वह सुखकर होता है
उससे अनुराग जन्म लेता है,
जब कष्टकर होता है
तब विराग।
जो उभय अवस्था में सम रहता है
वही यथार्थतः राग-द्वेषहीन
एवं ममत्वहीन है।

शब्द कानों का विषय है—
जब वह सुखकर होता है
उससे अनुराग जन्म लेता है,
जब कष्टकर होता है
तब विराग।
जो उभय अवस्था में सम रहता है
वही यथार्थतः राग-द्वेषहीन
एवं ममत्वहीन है।

गन्ध नाक का विषय है—
जब वह सुखकर होता है
उससे अनुराग उत्पन्न होता है,
जब कष्टकर होता है
तब विराग।

जो उभयावस्था में सम रहता है
वही यथार्थतः राग-द्वेषहीन
व ममत्वहीन है।

स्वाद जीभ का विषय है—
जब वह सुखकर है
उससे अनुराग उत्पन्न होता है,
जब कष्टकर है
तब विराग।
जो उभयावस्था में सम रहता है
वही यथार्थतः राग-द्वेषहीन
व ममत्वहीन है।

स्पर्श शरीर का विषय है—
जब वह सुखकर है
उससे अनुराग उत्पन्न होता है,
जब कष्टकर है
तब विराग।
जो उभयावस्था में सम रहता है
वही यथार्थतः राग-द्वेषहीन
व ममत्वहीन है।

भाव मन का विषय है—
जब वह सुखकर है
उससे राग उत्पन्न होता है,
जब कष्टकर है
तब विराग।
जो उभयावस्था में सम रहता है
वही यथार्थतः राग-द्वेषहीन
व ममत्वहीन है।

[क्रमशः

सामसुखाजी के प्रति मेरा आकर्षण

पण्डित सुखलालजी

[स्वर्गीय पूरणचन्द जी सामसुखा की जन्म शतवार्षिकी १ अगस्त १९८२ को समारोह सहित कलकत्ते में मनायी गयी। इस उपलक्ष में उनके ८०वें जन्म दिवस पर प्रकाशित 'पूरण चन्द सामसुखा अभिनन्दन ग्रन्थ' में प्रज्ञाचक्षु पण्डित सुखलाल जी ने उनके प्रति अपने जो हार्दिक उद्‌गार एक प्रबन्ध में व्यक्त किए उसे यहाँ पुनः मुद्रित करते हुए तित्थयर परिवार उस महान आत्मा को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है। —संपादक]

मेरी और सामसुखाजी की आयु में तो खास अन्तर नहीं है, परन्तु उनके और मेरे जन्मस्थानों में सैकड़ों मिलों का अन्तर है। हम दोनों के बीच कौटुम्बिक सम्बन्ध भी नहीं है। पर हम दोनों के बीच जो एक महत्त्व का अर्थपूर्ण सम्बन्ध है, वह है धर्मपरम्परा और विद्याव्यसन का।

सामसुखाजी का संवर्धन सम्भवतः मूर्त्तिपूजक श्वेताम्बर परम्परा में हुआ है; मेरा संवर्धन स्थानकवासी परम्परा में हुआ है। परन्तु पंथगत संस्कार अलग-अलग होने पर भी हम दोनों की मूल धर्मपरम्परा तो एक ही है और वह है जैन परम्परा। सामसुखाजी एक जमींदार सद्‌गृहस्थ के मैनेजर होने के नाते व्यावसायिक क्षेत्र में रहे हैं और मैं संयोगवश वंशानुकूल प्राप्त-व्यवसाय परंपरा से अलग हो कर विद्याक्षेत्र में आ पड़ा। सामसुखाजी का भी व्यवहार तो व्यावसायिक क्षेत्र में रहा, पर उन्हें विद्यावृत्ति की ओर भी विशेष आकर्षण रहा। खास कर उनका जैन परम्परा से सम्बन्धित तत्त्वज्ञान और इतिहास के बारे में विशेष आकर्षण रहा, ऐसा मैं समझता आया हूँ।

हम दोनों की धर्मपरम्परा और विद्यावृत्ति एक या दूसरे रूप में समान कही जा सकती है, पर उनके प्रति मेरे आकर्षण की भूमिका कुछ विशिष्ट है। समान धर्म होते हुए भी अनेक परिचित व्यक्तियों के साथ मेरा गाढ़ परिचय रहा नहीं। विद्यावृत्ति की समानता और साहचर्य रहने पर भी अनेकों के साथ मेरा सम्बन्ध निकट का नहीं बन सका। इसके कारण पर जब मैं अपनी मनोवृत्ति का विश्लेषण करता हूँ, तब मुझे भान पड़ता है कि मेरी वृत्ति विशेषतः विचार-स्वातन्त्र्य की ओर झुकती है। सामसुखाजी में मुझको थोड़ा-सा विचार स्वातन्त्र्य दिखा। तभी से उनके प्रति मेरा आकर्षण उत्तरोत्तर बढ़ता गया।

ईस्वी सन् १९२४ की गर्मी में मैं कलकत्ता में रहा। सम्भवतः उस समय प्रथम बार हम दोनों मिले। अगर यह स्मरण ठीक है तो यह भी निश्चित है कि उन्होंने मुझको भोजन के लिए अपने घर पर बुलाया। उनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीयुत् ऋषभचन्दजी, जो पांडिचेरी के अरविन्दाश्रम में हमेशा के लिए बस गये हैं, उस समय उन्हीं के मकान पर मुझे प्रथम बार मिले थे।

परन्तु सामसुखाजी का विशेष सम्बन्ध तो १९२६ से शुरू होता है। अहमदाबाद में मुझे उनका एक पत्र मिला, जिसमें जैन तत्त्वज्ञान से सम्बन्ध रखनेवाले दो तीन मुद्दों पर मेरे विचार लिख भेजने का अनुरोध था। मैंने उस समय की अपनी समझ के अनुसार उनके प्रश्नों का जवाब लिख भेजा। हिन्दी में लिखे गये उस प्रश्नोत्तर का गुजराती अनुवाद 'दर्शन अने चिन्तन' के दूसरे भाग में छपा है। इसके बाद हम दोनों के बीच विद्या और विचार-स्वातन्त्र्यमूलक सम्बन्ध विशेष विकसित हुआ।

मैं १९२७ से लेकर १९५३ तक अनेक बार कलकत्ता गया। कई बार तो व्याख्यानमाला के अवसर पर जाना पड़ा। मैं बाबू बहादुर सिंहजी सिंघी के मकान पर ठहरता रहा हूँ। जब मैं जाता तो सामसुखाजी से अवश्य मिलता। हम दोनों जब-जब मिले हैं, तब-तब हमारे बीच मुख्य चर्चा तात्त्विक और ऐतिहासिक ही रही है। सामसुखाजी जैन परम्परा से सम्बन्धित किसी-न-किसी बात पर बंगला में लिखते ही रहे हैं। वे शास्त्रीय वाचन-चिन्तन में विशेष रस लेते रहे हैं। इसलिए हम दोनों की चर्चा उन्हीं शास्त्रीय विषयों पर केन्द्रित हो जाती थी।

मैंने उनके साथ होने वाली चर्चा में यह कभी नहीं देखा कि वे किसी बात को बिना आधार या प्रमाण के मान लें अथवा तर्क विरुद्ध बात को मान लें। उनकी भाषा व बोलने की शैली तो मधुर है ही, पर उनकी स्वतन्त्र विचारसरणी भी आदर पैदा करती है।

किसी समय समुद्र-यात्रा के प्रश्न पर अजीमगंज आदि में दलबंदी हो गई थी। दोनों दलों में राजपूती प्रकृति के लोग आमने-सामने थे। अगर मेरा स्मरण ठीक है तो, सामसुखाजी और बहादुरसिंहजी सिंघी दोनों अलग-अलग दल में थे। परन्तु मैंने देखा है कि जब सामसुखाजी सिंघीजी के मकान पर आते तो उस उग्र दलबंदी को भुला कर ही वे दोनों मिलते रहे। श्रीमान् सिंघीजी मुझको कई बार कहते थे कि सामसुखाजी एक सच्चे अभ्यासी हैं।

सामसुखाजी ने जब मैनेजरशिप छोड़कर निवृत्ति ली, तब वे कुटुम्ब के

साथ काशी में आकर भी रहे। उनके पुत्र-पौत्र कारोबार का काम चलाते थे। उस समय वे कभी-कभी हिन्दू विश्वविद्यालय में आकर मेरे और पं० दलसुख मालवणियाजी के साथ अपने विषयों की मुक्त चर्चा भी करते थे।

उनके उदात्त मन और निश्चित विचारसरणी का एक प्रसंग यहाँ लिखूं तो वह उनकी जीवन दृष्टि समझने में उपयोगी सिद्ध होगा। सामसुखाजी उत्तराध्ययन सूत्र का बंगलानुवाद करते थे। उस अनुवाद को छपाने का प्रश्न आया। मेरे समक्ष बाबू नरेन्द्र सिंहजी और सामसुखाजी बात करते रहे। श्रीमान् नरेन्द्र सिंहजी ने उस अनुवाद को अपनी ओर से प्रकाशित करने की बात रखी। सामसुखाजी को प्रस्ताव पसंद था। पर वे यकायक स्पष्टता से कहने लगे कि, अनुवाद छपे सो इष्ट है, पर उसमें किसी का फोटो या किसी की प्रशस्ति रहे, यह मुझे इष्ट नहीं। सामसुखाजी मुझसे इतना तो कह चुके थे कि इसे अन्त में मैं अपने ही खर्च से प्रकाशित करूंगा। थोड़े ही रोज हुए, अभी आधे उत्तराध्ययन का वह बंगलानुवाद कलकत्ता युनिवर्सिटी से प्रकाशित होकर मेरे पास आया है। हालांकि श्रीमान् नरेन्द्र सिंहजी सिंघी ने पुस्तक में फोटो या प्रशस्ति रखने की कोई बात नहीं कही थी या कोई शर्त नहीं रखी थी; फिर भी आजकल प्रकाशन खर्च करने वालों में जो एक परम्परा रूढ़ हो गई है, उसी रूढ़ि को लक्ष्य करके शायद सामसुखाजी ने अपना दृष्टिकोण रखा होगा। सामसुखाजी की इस दृष्टि से मैं बहुत प्रभावित हुआ इसलिए कि आखिर भगवान के उपदेश और सिद्धान्त रूप में स्वीकृत आगमों के प्रकाशन पर दाताओं की मुद्रा लगाना उचित जान नहीं पड़ता। अस्तु।

पिछले लगभग ८ वर्षों से मैं सामसुखाजी से मिला नहीं हूँ। पर मैंने सुना है कि उनकी सात्त्विक वृत्ति और दृष्टि की विशालता और भी बढ़ी है। उनके साधक पुत्र श्रीमान् ऋषभचन्दजी, और पांडिचेरी आश्रम में यदाकदा जाने-रहने का अवसर, इन दोनों का उन पर अच्छा प्रभाव पड़े, तो यह स्वाभाविक है। श्रीमान् सामसुखाजी स्वस्थमना और चिरंजीवी होकर अपनी आध्यात्मिक उत्क्रान्ति करते रहें, यही वांछनीय है।

दर्शन और विज्ञान में आत्मा

'उदय' नागोरी जैन

"न हि मनुष्यात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्" यहाँ मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है क्योंकि उसके पास विकसित मस्तिष्क है। एक चिर चिन्तनशील प्राणी होने के कारण मनुष्य आदि काल से ही कुछ न कुछ सोचता आया है। एक प्रश्न जो समय और स्थान की परिधि को लांघकर मनुष्य को उद्वेलित करता रहा है वह है "आत्मा क्या है और इसका अस्तित्व क्या है?" इसी प्रकार मनुष्य सोचता है, "मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मुझे कहाँ जाना है?" इन प्रश्नों के दो उत्तर हो सकते हैं। प्रथम—तुम एक शाश्वत इकाई कृत कर्मों के अनुसार नाना योनियों में भ्रमण करने वाले चैतन्य गुणोपेत एक स्वतन्त्र सत्ता हो, निःश्रेयस को पाना तुम्हारा लक्ष्य है और द्वितीय—वर्तमान जीवन के पूर्व तुम न कुछ थे और न इसके बाद ही रहोगे। दोनों में रात-दिन का अन्तर है परन्तु यह निश्चित है कि ये प्रश्न शाश्वत हैं।

विज्ञान में भी 'किं तत्त्वं' की खोज करते-करते असंख्य आविष्कार हुए हैं। स्पेन्सर ने आत्मा को 'अज्ञेय' माना, कान्ट ने 'अज्ञात'। और अन्य ने 'अन्धकारग्रस्त कन्दरा'। दर्शन और विज्ञान का परम लक्ष्य एक ही है क्योंकि दोनों ही सत्य तक पहुँचने के उपक्रम हैं। फिर भी दोनों में अन्तर स्पष्ट है। दर्शन का सत्य चिन्तन प्राप्त सत्य है जो स्थूल रूप में प्राप्त नहीं होता जबकि विज्ञान का सत्य प्रयोग प्राप्त। दोनों विपरीत दिशाओं के पथिक होते हुए भी एक ही ओर बढ़ते हैं। नये वैज्ञानिक उन्मेषों से दोनों के बीच की खाई पटती जा रही है।

पाश्चात्य दर्शन में अहम् (Self) को आत्मा का समानार्थक माना है। अमेरिकी दार्शनिक पाल जेम्स के अनुसार "किसी का अहम् वह बोध है जिससे वह स्वयं को समझता है। यह अपरिवर्तनीय है। शरीर बदलता है; विकसित होता है और अन्त में एक दिन नष्ट हो जाता है। परन्तु मृत्यु पर्यन्त वह अपने को 'स्वयं' ही सोचता है।" वह यह भी मानता है कि मनुष्य की आत्मा ही उसे जीवित रखती है और यह अनित्य है।[1]

अरस्तु, पाइथागोरस और लॉक आत्मा का अस्तित्व जन्म से पूर्व ही स्वीकार करते हैं। डा० वेलेन्ड लिखते हैं—

[1] Modes of Being, p. 47-52.

"कुछ मूल तत्व मस्तिष्क की शक्तियों की उत्पत्ति में सहायक होते हैं। शायद यह मूल तत्व ही आत्मा है ."[२]

१९ वीं शताब्दी के चिन्तक, दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक विलियम जेम्स लिखते हैं—"यदि मुझे पूछा जाय कि आत्मा क्या है तो मैं तत्परता से जबाब दूंगा—आत्मा जीवन का अस्तित्व है।[३]

आत्मा का शरीर में क्या स्थान है इसकी भी कई मान्यताएँ हैं। कोई इसे सिर में, कोई हृदय में और कोई आँखों में मानते हैं। परन्तु आत्मा का शरीर के किसी भी विशेष अंग से सम्बन्ध नहीं है। यह सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। मनुष्य के जन्म के समय से लेकर उसके पूर्ण विकसित होने तक यह उसके शरीर में व्याप्त रहती है और मृत्यु के समय पुनः बीज रूप होकर पुनर्जन्म के लिए तत्पर रहती है।

मन मनुष्य को भरमाता है और आत्मा मन रूपी घोड़े की लगाम खींचकर उसे नियन्त्रित करती है। प्रायः मनुष्य मन के वशीभूत होकर दुष्कार्यों में लीन रहता है और आत्मा को दबा देता है। आत्मा हर कुकर्म में प्रवृत्त होने के समय हमें सचेत करती है परन्तु हम इस पर ध्यान न देकर मन के दास हो जाते हैं। आत्मा वास्तव में मन से पृथक और जड़ से भिन्न तत्व है।

आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व सात प्रमाणों से जाना जा सकता है—

(१) स्वसंवेद साधक प्रमाण—देहधारी न्यूनाधिक रूप में अज्ञान के आवरण में घिरे हुए हैं और स्वयं के अस्तित्व में भी सन्देह करते हैं। परन्तु स्थिर बुद्धि के समय ही "मैं हूँ" की स्फुरणा होती है—

"सर्वो ह्यात्मा अस्तित्वं प्रत्येति, न नाहमस्मीति।"

(२) बाधक प्रमाण का अभाव—मन, इन्द्रियाँ और सूक्ष्म दर्शक यन्त्र आत्मा का निषेध नहीं कर सकते। इन्द्रियाँ भौतिक और सीमित ज्ञान रखती हैं। इन्द्रियाँ स्थूल निकटवर्ती और नियत विषयों को वाह्य रूप में ही जान सकती है। मन इन्द्रियों से अधिक सामर्थ्यवान होने पर भी अपनी चंचलता के कारण इन्द्रियों का दास होता है। मन में राजस और तामस वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं सात्विक नहीं। स्पष्ट है कि आत्मा इनसे भिन्न कुछ विशेष शक्ति है जो हमें संचालित कर रही है। जैसा कि कहा गया है—

---

[२] Elements of Intellectual Philosophy.

[३] Principles of Psychology.

"इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥"[४]

(३) निषेध से निषेध करने वाले की सिद्धि—जो आत्मा के अस्तित्व को अस्वीकार करते हैं उन्हें भी निषेध करने वाली आत्मा है जैसा कि शंकराचार्य ने कहा है—

"य एव हि निराकर्ता तदेव ही तस्य स्वरूपम्।"

(४) तर्क—प्रायः सभी विशेषताओं के विपरीत मूलक शब्द होते हैं जैसे अन्धकार—प्रकाश, मृत्यु—अमरता, ज्ञान—अज्ञान, सुख—दुःख। अतः जड़ का विपरीत चेतन भी है ही। जड़ और चेतन दो स्वतन्त्र तत्त्व हैं। हमारे शरीर से चेतन का निष्क्रमण होने पर वह जड़ हो जाता है क्योंकि जीवन की सत्ता ही चेतन है।

(५) शास्त्र—प्राचीन शास्त्रों और महापुरुषों के प्रमाणों से सिद्ध है कि आत्मा का अस्तित्व है।

(६) वैज्ञानिक—वैज्ञानिकों ने भौतिक तत्त्व से परे आत्म-तत्त्व पर भी अपनी दृष्टि डाली है। सर ऑलिवा लॉज और लार्ड केलविन के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। दोनों ने समर्थन किया है कि चेतन जड़ से पृथक है।

(७) पुनर्जन्म—अपने संचित कर्म और संस्कार से हमें पुनर्जन्म में फल मिलता है। कट्टर निरीश्वरवादी जर्मन विद्वान नितशे भी पुनर्जन्म को मानता है।

उपरोक्त विवेचन के बाद अब हम यह देखते हैं कि भारतीय दर्शन, पाश्चात्य दर्शन और विज्ञान में आत्मा विषयक क्या मान्यताएँ हैं।

भारतीय दर्शन :

वैदिक परम्परा में आत्मा—

कठोपनिषद् में नचिकेता को यमराज द्वारा आत्मज्ञान का बोध कराया गया। आत्म-विद्या और समग्र योग विधि पाकर उसने ब्रह्म का अनुभव किया और अमरता प्राप्त की।[५] साथ ही यमराज ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि आत्मा शरीर रूपी रथ का स्वामी है, बुद्धि सारथि है और मन लगाम है। इससे भी सिद्ध है कि आत्मा पृथक तत्व है।

---

[४] भ० गीता, अ० २ श्लोक ६७।

[५] कठोपनिषद्, ६-१८।

"आत्मानम् रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धि तु सारथि विद्धि मनः प्रगह मेव च ।।"[६]

श्वेताश्वतरोपनिषद् में वर्णन किया गया है कि आत्मा न तो स्त्री है न पुरुष और न नपुंषक ही । यह शरीर से संबन्धित है और उसमें मिश्रित है—

'नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः ।
यद् यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यतः ।।"

आत्मा के स्थान के विषय में इसे अविरोधश्चन्दनवत् बताया गया है अर्थात् यह चन्दनवत् शरीर में यत्र तत्र सर्वत्र व्याप्त है ।

अद्वेत वेदान्त के अनुसार आत्मा एक है, सच्चिदानन्द है, नित्य और स्व प्रकाश चैतन्य है । यह न तो ज्ञाता है न ज्ञेय और न अहम् ही । विशिष्टाद्वैत मतानुसार आत्मा केवल चैतन्य ही नहीं है बल्कि एक ज्ञाता है जिसे अहम् कह सकते हैं—"ज्ञाता अहमर्थ एवात्मा ।"

मनुस्मृति—

मनुस्मृति में भी आत्मा का वर्णन है । इसमें बताया गया कि सब ज्ञानों में श्रेष्ठतम् आत्म ज्ञान है, वही सब विद्याओं में अगली विद्या है जिससे मनुष्य को अमृत (मोक्ष) मिलता है ।

"सर्वेषामपि चेदेषा, मात्मज्ञान परं स्मृतम् ।
तद्धयग्रमं सर्व विद्यानां, प्राप्नते ह्यमृत ततः ।।"[७]

भगवद्गीता—

भगवान कृष्ण ने भगवद्गीता में आत्मा के स्वरूप का वर्णन किया है और बताया है कि जिस प्रकार हम जीर्ण वस्त्र को त्यागकर नवीन वस्त्र धारण करते हैं उसी प्रकार आत्मा नवीन शरीर धारण करती है ।

"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।[८]

और आगे यह भी कहा गया है कि आत्मा को न तो कोई शस्त्र छेद

---

[६] वही, ३-३ ।
[७] मनुस्मृति, अ० १२ ।
[८] भ० गीता, अ० २ श्लोक २२ ।

सकता है, न अग्नि जला सकती है, न जल गला सकता है और न ही हवा शोष सकती है।

"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥"[९]

चार्वाक दर्शन—

चार्वाक के अनुसार आत्मा शरीर से भिन्न अभौतिक सत्ता नहीं है अर्थात् शरीर चेतन्य रहित या आत्मा रहित नहीं है क्योंकि जहाँ एक जगह निषेध है उसका अस्तित्व अवश्य है।

"यन्निषिद्यते तत् सामान्येन विद्यते एव।"[१०]

चार्वाक मानते हैं कि "चेतन्य विशिष्टो देह एवं आत्मा" अर्थात् चेतना शरीर (जो जड़ तत्त्वों से बना है) में है। परन्तु यह जड़वादी मत है इसे ठीक नहीं माना जा सकता।

सांख्य दर्शन—

सांख्य मतानुसार आत्मा स्वयंसिद्ध, अखण्ड, नित्य और सर्वव्यापी है। आत्मा ज्ञान नहीं सदैव ज्ञाता है और कभी सांसारिक विषय नहीं बन सकता।

योग—

जब चित्त किसी वृत्ति में परिणत हो जाता है तब उस पर आत्मा का प्रकाश पड़ता है और वह आत्मसात हो जाता है। जन्म-मरण आदि तो शारीरिक विकार है, आत्मा का इनसे कोई सम्बन्ध नहीं। आत्मा अजन्मा और अमर है। इसी प्रकार ध्यान, कल्पना, स्मृति, विस्मृति मन की प्रवृत्तियाँ हैं। आत्मा इन सभी विकारों से परे है।

मीमांसा—

आत्मा नित्य और अविनाशी द्रव्य है जो वास्तविक जगत में वास्तविक शरीर के साथ संयुक्त रहती है। आत्मा मृत्युपरान्त कर्मों का फल भोगती है। मीमांसा के अनुसार प्रत्येक जीव में पृथकात्मा है और चेतन्य आत्मा का वास्तविक गुण नहीं वरन् एक औपाधिक गुण है जो अवस्था विशेष में उत्पन्न होता है। सुषुप्तावस्था और मोक्षावस्था में आत्मा चेतन्य रहित हो जाती है।

---

[९] भ० गीता, अ० २ श्लोक २३।

[१०] षड् दर्शन समुच्चय, पृष्ठ ४८-४६, गुणरत्न।

न्याय—

जब तक आत्मा शरीर ग्रस्त रहती है तब तक इसके लिए दुःखों का पूर्ण विनाश सम्भव नहीं है। शरीर मुक्त होने पर आत्मा के दुःखों और सुखों का अन्त होकर वह अनुभूति रहित हो जाती है अर्थात्—

शरीर+आत्मा=सुख-दुःख।

शरीर—आत्मा=अचेतन, मुक्त।

अचेतन की चरमावस्था ही अभयम्, अजरम् और अमृत्युपदम् कहलाती है।

आत्मा शरीर, इन्द्रिय, मन एवं विज्ञान प्रवाह से भिन्न है। चैतन्य के लिए आत्मा आश्रय द्रव्य है। आत्मा ज्ञान नहीं वरन् ज्ञाता है जो अहंकार का आश्रय तथा भोक्ता भी है। जैसे कहा गया है कि :

"चैतन्य आत्मा का स्वरूप नहीं है। इसमें चेतना का संचार तभी होता है जब इसका मन के साथ, मन का इन्द्रियों के साथ और इन्द्रियों का बाह्य-पदार्थों के साथ सम्पर्क होता है। शरीर मुक्त होने पर इसमें ज्ञान का अभाव रहता है।[११]

किन्तु नव्य नैयायिक मानते हैं कि मानस प्रत्यक्ष के द्वारा आत्मा का साक्षात् ज्ञान होता है। जैसे 'मैं हूँ' प्रतिध्वनित करने पर मन और आत्मा का योग है। बुद्धि चलित कार्यों का कारण यह अचेतन शरीर नहीं हो सकता। उनके लिए आत्मा की आवश्यकता है।[१२]

वैशेषिक दर्शन—

वैशेषिक मत वस्तुवादी है। इसके अनुसार आत्मा एक ऐसा द्रव्य है जिसमें बुद्धि या ज्ञान, सुख-दुःख, राग-द्वेष, इच्छा-वृत्ति या प्रयत्न आदि गुण के रूप में वर्त्तमान रहते हैं। ये गुण जड़-द्रव्यों से भिन्न होते हैं। आत्मा नित्य और सर्वव्यापी है। यह चैतन्य का आधार है। आत्मा की न उत्पत्ति है और न यह नष्ट ही होती है। यह विभु है।

आत्मा दो प्रकार की होती है : (१) जीवात्मा—जो सबके शरीरों में भिन्न-भिन्न आत्मा है क्योंकि उसके अनुभव एक दूसरे से पृथक हैं। इसका ज्ञान मानस प्रत्यक्ष से होता है। (२) परमात्मा—यह एक है और जगत्कर्त्ता है।

बौद्ध दर्शन—

यद्यपि बौद्ध दर्शन में शून्यवाद पर जोर दिया गया है फिर भी पुण्य,

---

[११] न्याय सूत्र और भाष्य, ३.१,४।

[१२] तर्कभाषा, पृ० ६ ; तर्क कौमुदी, पृ० ८।

पाप, पुनर्जन्म और मुक्ति को माना गया है। परिवर्तनशील दृष्ट धर्मों के अतिरिक्त किसी भी अदृष्ट स्थायी द्रव्य को नहीं मानने से आत्मा को भी नहीं मानते। आत्मा पुद्‌गल, जीव, सत्ता की समानार्थक है। बौद्ध मतानुसार जीवन विभिन्न क्रमबद्ध और अव्यवहित अवस्थाओं का एक प्रवाह है और आत्मा विज्ञानों का प्रवाह है। लोक व्यवहार के लिए आत्मा की सत्ता है जो रूप, विज्ञान, वेदना, संज्ञा, संस्कार पंच स्कन्धों का संघात मात्र है जो अव्यक्त है। इनके अतिरिक्त आत्मा कोई परमार्थ भूत पदार्थ नहीं है।

कर्मफल में विश्वास रखने के कारण भगवान बुद्ध ने धम्मपद में आत्मा को शुद्ध करने और किसी प्रकार का पाप न करने की आज्ञा दी है। यह भी बताया गया है कि वर्तमान जीवन की अन्तिम अवस्था से भविष्य की प्रथम अवस्था की उत्पत्ति होती है। आत्मा को नित्य मानने से इस पर अनुराग-आसक्ति बढ़ती है जो दुःख का कारण है।

जैन दर्शन—

दर्शन क्षेत्र में जैन दर्शन का विशेष महत्व है। इसमें जीव-अजीव का सिद्धान्त बहुत महत्वपूर्ण है। जैन दर्शन वैज्ञानिक दर्शन है। इसके अनुसार चेतन द्रव्य को जीव या आत्मा कहते हैं। चैतन्य ही प्रत्येक जीव का स्वरूप है।

"चेतना लक्षणो जीवः।"[१३]

आत्मा की सूर्य से उपमा दी गयी है। आत्मा के साथ ही जीव है अन्यथा मृतक है। बन्धनयुक्त होने पर आत्मा की शक्ति परिमित हो जाती है। आत्मा जीव है और जीव का अस्तित्व जीव शब्द से ही सिद्ध है। आत्मा शरीर से भिन्न है और सर्वत्र व्याप्त है। इसका अर्थ यह नहीं कि यह जड़ द्रव्यों की तरह विस्तार करती है परन्तु इसमें शरीर के भिन्न अंगों के अनुभव वर्तमान है। आत्मा आलोक की तरह शरीर के किसी स्थान में चैतन्य द्वारा व्याप्त रहती है। यह शरीर की परिचालक है और इन्द्रियाँ साधन हैं। शरीर और चैतन्य में कार्य कारण का सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता। शरीर के साथ चैतन्य का सहचर्य नित्य नहीं होता जैसे निद्रा और मूर्च्छा के समय चैतन्य अपना कार्य करता रहता है।

जिसे बुद्ध ने अव्यक्त की संज्ञा देकर छोड़ दिया उसे भगवान महावीर ने

---

[१३] षड् दर्शन समुच्चय, पृ० ४७।

सरल शब्दों में व्यक्त किया है। आत्मा को वैतरणी-नदी और कामधेनु (अप्पा नई वेइरणी, अप्पा काम धेणु) बताते हुए महावीर कहते हैं—

"अप्पा कत्ता विकत्ता य सुहाण य दुहाण य।
अप्पा मित्तममित्त च सुपट्ठि य दुपट्ठि यो॥"

अर्थात् आत्मा ही कर्त्ता और विकर्त्ता है, यही सुख और दुःख का भोक्ता है। आत्मा ही मित्र, अमित्र, सुप्रयुक्त और दुष्प्रयुक्त है। और भी—

"अप्पादंतो सुही होई अस्सि लोए परत्थय।"[१४]

अर्थात् आत्मा का दमन करने वाला दोनों लोकों में सुखी होता है। आत्मा के लक्षण बताते हुए कहा गया है—

"नाणं च दंसणं चेव चरितं च तवो तहा।
वीरियं उपयोगो च एवं जीवस्स लक्खणं॥"[१४]

अर्थात् ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग आत्मा के लक्षण हैं।

चैतन्य आत्मा का ही गुण हो सकता है। पाँचों इन्द्रियों जनित विषय की समष्टि रूप से अनुभूति करने वाला द्रव्य आत्मा है। आत्मा शाश्वत स्वतन्त्र द्रव्य है और किसी अखण्ड सत्ता का अंश नहीं है। उपासन के अभाव में इसकी उत्पत्ति नहीं होती और इसका विनाश भी नहीं होता जैसा कि कहा गया है:

"जीवो अणाइ अनिधनो,
अविणासी अक्खओ धुओ णिच्चं।"

अर्थात् जीव (आत्मा) अनादि, अनिधन, अविनाशी, अक्षय, ध्रुव और नित्य है। जीव की पर्याय बदलती रहती है। एक ही जीव नाना योनियों में भटकता है या बचपन, तारुण्य, वार्द्धक्य की स्थितियाँ अपनाता है। संकोच, विकोच इसका स्वभाव है। इसके असंख्य प्रदेश होते हैं।

आत्मा का ध्येय जन्ममरणशील संसार के पार पहुँचना है। यह संसार समुद्र है, शरीर नाव और जीव नाविक है। इस संसार समुद्र को महर्षि ही पार कर सकते हैं—

"सरीर माहु नावुति जीवो वुच्चई नाविओ।
संसारो अण्णवो वुत्तो जं तरन्ति महेषिणो॥"

कषाय की आँधी से कर्मरूपी धूल उड़कर आत्मा की दीवारों पर चिपक जाती है। इन कर्मों की चिपक जितनी मजबूत होती है उतनी ही देर

[१४] उत्तराध्ययन सूत्र, १-५५।

उसे छुड़ाने में लगती है। कर्मों से मुक्त होने पर ही आत्मा सिद्ध होती है और ऐसी अवस्था में पहुँचती है जहाँ जन्म नहीं, मरण नहीं, भय नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं, दुःख नहीं, दारिद्र नहीं, कर्म नहीं, काया नहीं, मोह नहीं, माया नहीं। जैसा कि दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है—

जया कम्मं खवित्ताणं सिद्धिं गच्छई नीरओ।
तया लोगमत्थयत्थो सिद्धो हवई सासओ ॥[१५]

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन दर्शन में आत्मा का स्पष्ट रूप मिलता है।

पाश्चात्य दर्शन :

पाश्चात्य दर्शन में भी आत्मा का अस्तित्व स्वीकार किया गया है परन्तु भारतीय दर्शन से साम्य भी है और वैषम्य भी। पाश्चात्य जगत् के आदि दार्शनिक प्लेटो मानते थे कि संसार के समस्त पदार्थ द्वन्द्वात्मक हैं अतः जीवन के पश्चात् मृत्यु और मृत्यु के पश्चात् जीवन अनिवार्य है। सुकरात और अरस्तू भी पुनर्जन्म में विश्वास करते थे।

रेने डेकार्ट ने सरल उदाहरण से इस विषय को स्पष्ट किया है। "मैं चिन्तन करता हूँ" इसका अर्थ "मैं" हूँ और इसमें "मैं" या आत्मा की ध्वनि होती है। आत्मा और प्रकृति एक दूसरे पर क्रिया-प्रतिक्रिया करती हैं।

स्पिनोजा यह मानते थे कि प्रत्येक द्रव्य में अनन्तगुण हैं और प्रत्येक गुण भी अनन्त हैं। हमारा ज्ञान दो गुणों तक ही सीमित है—चेतन और विस्तार। चेतना के असख्य रूप हैं और हर रूप आत्मा है। विस्तार के भी असंख्य रूप हैं। प्रत्येक रूप प्राकृत पदार्थ कहलाता है। ये दोनों गुण सदा एक साथ मिलते हैं। ये एक ही द्रव्य के दो पक्ष हैं, दो स्वतन्त्र द्रव्यों के गुण नहीं। एक ही द्रव्य एक ओर से चेतन और दूसरी ओर से विस्तृत है। प्रत्येक गुण व्यापक चेतना या व्यापक विस्तार का एक आकार है। जो पुरुष समस्त प्राणियों को आत्मा में और आत्मा को सर्वप्राणियों में देखता है वह किसी से घृणा नहीं कर सकता।

लाइबनिज़ ने बताया कि आत्मा शरीर से पृथक कहीं विद्यमान नहीं। इसका एक ही अपवाद है और वह परमात्मा है।

जान लॉक ने बताया कि आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय है। "मैं चिन्तन करता हूँ, मैं तर्क करता हूँ, मैं सुख दुःख का अनुभव करता हूँ", से

[१५] दशवैकालिक सूत्र, अ० ४ गा० १६।

अपनी सत्ता अनुभव होती है और ज्ञान होता है। इससे कह सकते हैं कि आत्मा ज्ञान की विषय है।

जार्ज बर्कले ने सारे विश्व की सत्ता को तीन भागों में विभक्त कर दिया। (१) आत्मा और उनके बोध, (२) परमात्मा, (३) बाह्य पदार्थ। उनके अनुसार आत्मा का तत्त्व चिंतन है। आत्मा कभी भी चिन्तन या चेतना के बिना नहीं रह सकती। बर्कले ने लॉक की स्वप्नरहित निद्रा को मानने से अस्वीकार कर दिया।

डेकार्ट, लॉक और बर्कले ने आत्मा की सत्ता को स्वयं सिद्ध स्वीकार किया था अतः उनके अनुसार किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं थी। ह्यूम ने आत्मा को भी प्रकृति की तरह एक कल्पना मात्र माना। फीख्टे ने 'मैं हूँ' से प्रकट किया कि 'मैं' ज्ञेय से भिन्न है। मैं और ज्ञेय एक दूसरे से ओतप्रोत हैं।

हीगेल का आत्मा सम्बन्धी सिद्धान्त विशेष उल्लेखनीय है। हीगेल के अनुसार स्वाधीनता ही आत्मा की सार है। आत्मा का तत्त्व अपने आपमें पर्याप्त होता है। आत्मा को अपने साथ ही संघर्ष करना पड़ता है। परन्तु इससे आगे हीगेल के सिद्धान्त में दार्शनिकता नहीं रह जाती क्योंकि उनके अनुसार उन्नति की यात्रा में आत्मा अन्त में राष्ट्र का रूप धारण कर लेती है।

आर्थर शॉपिनहावर के अनुसार जीवन बुरा है; इससे चिपटे रहने की इच्छा और भी बुरी है। मेधावी पुरुष में इच्छाएँ निर्बल होती हैं और मनन प्रबल।

नीत्शे मानते हैं कि आत्मा के लिए अनेक बोझ हैं। बलवान आत्मा ही बोझ उठाने की क्षमता रखती है। चेतना में सदा नूतनता प्रकट होती है। हमारी आत्मा हमें सदा ही नया बनाने में लगी हुई है।

अमेरिकी दर्शन :

अमेरिकी दार्शनिक चार्ल्स सैंडर्स पीअर्स का मत सांख्य से साम्य रखता है। उनके अनुसार चेतन आत्मा में नियम के साथ अनिश्चितता का अच्छा अंश भी मौजूद है अर्थात् आत्मा पुरानी आदत त्यागकर नई बना सकती है।

विलियम जेम्स और जॉन ड्यूई के अनुसार जीवन का तत्त्व संघर्ष में है। संघर्ष से अनेकवाद का समर्थन होता है।

विज्ञान और आत्मा :

वैज्ञानिकों ने भी आत्मा के सम्बन्ध में अनुसन्धान किए हैं किन्तु अभी तक किसी निश्चित निर्णय पर नहीं पहुँच पाए हैं। आत्मा उनके लिए पहेली बनी हुई है। सर्वप्रथम अभिनव विज्ञान के जनक बेकन ने दर्शन से पृथक वैज्ञानिक परिभाषाएँ दीं जिससे कल्पना की सीमाएँ विस्तृत हुईं। भौतिकवादी वैज्ञानिक प्रकृति में सर्वत्र गुणात्मक परिवर्तन देखते हैं और यह मानते हैं कि सभी पदार्थों की पर्याय बदलती रहती है। यह भी सिद्ध है कि कोई पदार्थ कभी भी नष्ट नहीं होता चाहे उसके रूप बदल जाएँ। अर्थात् आत्मा भी सदा रहती है परन्तु यह है क्या यह नहीं कहा जा सकता। कुछ वैज्ञानिकों ने तो स्वीकार कर लिया है कि विज्ञान अभी तक चरम सत्य तक नहीं पहुँच पाया है।[१६]

सर ए० एस० एडिंगटन The Modern Review, Calcutta, July 1936 में लिखते हैं—"कुछ अज्ञात चीज हो रही है परन्तु क्या? यह अव्यक्त है। धर्म आत्मा और मस्तिष्क से सम्बन्धित है और इसे ठुकराया नहीं जा सकता।"

इसी प्रकार Sir Oliver Lodge लिखते हैं—"The Soul of man passes between death and rebirth in this world as he passes through dreams in the night." अर्थात् मनुष्य जिस प्रकार स्वप्न लोकमें भ्रमण करता है उसी प्रकार मनुष्य की आत्मा मृत्यु और पुनर्जन्म के बीच भ्रमण करती है।

उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि यह विश्व भौतिक की अपेक्षा आध्यात्मिक अधिक है। "The universe is a more spiritual entity than we thought. The real fact is that we are in the midst of a spiritual world which dominates the material."

इस प्रकार उपरोक्त तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि आदि दार्शनिकों से लेकर आज तक के वैज्ञानिकों और दार्शनिकों ने आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किया है। सभी ने यह माना है कि आत्मा शरीर से भिन्न द्रव्य है जो शाश्वत और स्वतंत्र सत्ता है। आत्मा शरीर के दुःखों से प्रभावित नहीं होती। आत्मा की मुक्ति से ही जीव की मुक्ति होती है। वैज्ञानिकों द्वारा सतत् अनुसन्धान किए जा रहे हैं और समय आ सकता है जब इस विषय का स्पष्ट ज्ञान मालूम हो जाएगा।

---

१६ 'Science is not yet in contact with ultimate reality.'
—Mysterious Universe, p. iii.

सहायक ग्रन्थ सूची

English :

1. The Philosophy of Kant, K. J. Fredrick
2. The Philosophy of Hegel, K. J. Fredrick
3. The Philosophy of Spinoza, K. J. Fredrick
4. Outlines of Jainism, J. L. Jain
5. The Key of Knowledge, C. R. Jain
6. Jain Philosophy, Dr. M. L. Mehta
7. Jainism, H. Warren
8. Modes of Being, Paul James
9. The Elements of Indian Logic, B. C. Atrey
10. Elements of Intellectual Philosophy, Dr. Waland
11. Encyclopaedia of Religion and Ethics

हिन्दी—

१२. भारतीय दर्शन, दत्त और चौधरी
१३. दर्शन और चिन्तन, पं० सुखलाल
१४. आत्मा के अस्तित्व की समस्या, सुदर्शन पाण्डे
१५. कठोपनिषद्
१६. श्वेताश्वतरोपनिषद्
१७. धर्म और विज्ञान, रामधारी सिंह 'दिनकर'
१८. विज्ञान और दर्शन, मुनि नगराज
१९. पश्चिमी दर्शन, दिवानचन्द्र
२०. आभास और सत्, ब्रैडले
२१. दशवैकालिक सूत्र
२२. भगवती सूत्र
२३. उत्तराध्ययन सूत्र

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

प्रभु को आनन्दित करने के लिए कुछ देवकुमार कन्दुक की भाँति उनके सामने उत्पतित होते। कुछ देवकुमार राजशुक का रूप धारण कर चाटुकार की तरह 'जीवित रहो, जीवित रहो, आनन्द से रहो, आनन्द से रहो' ऐसी ध्वनि करते। कुछ देवकुमार मयूर होकर केका स्वर में गाते और नृत्य करते। प्रभु के मनोहर हस्तकमल का स्पर्श सुख प्राप्त करने के लिए कुछ देवकुमार हंस रूप धारण कर गान्धार स्वर में गीत गाते हुए उनके आस-पास घूमते। कुछ देवकुमार प्रभु के स्नेह रूपी अमृत का पान करने की इच्छा से क्रौंच पक्षी का रूप धारण कर उनके सामने मध्यम स्वर में बोलते। कुछ प्रभु का मन प्रसन्न करने के लिए कोयल का रूप बनाकर निकटस्थ वृक्ष पर बैठकर पंचम स्वर में गाते। कुछ स्व आत्मा को पवित्र करने के लिए प्रभु का वाहन होने की इच्छा से अश्वरूप धारण कर हिनहिनाते हुए भगवान के निकट आते। कुछ हाथी का रूप धारण कर निषाद स्वर में चिंघाड़ते हुए मुख नीचा कर प्रभु का चरण स्पर्श करते। कुछ वृषभ रूप धारण कर शृंग द्वारा भूमि कुरेदते हुए वृषभ स्वर में भगवान को आनन्दित करते। कुछ अंजनाचल की भाँति वृहद् महिष रूप धारण कर परस्पर युद्ध करते और प्रभु को युद्ध क्रीड़ा दिखाते। कुछ भगवान के आनन्द के लिए मल्लरूप धारण कर अपनी दोनों भुजाओं को ठोकते-ठोकते अन्य को द्वन्द्व युद्ध में प्रवृत्त होने के लिए आह्वान करते। इस प्रकार योगी जैसे नाना रूप से प्रभु की उपासना करते हैं वैसे ही देवकुमार भी नाना प्रकार की क्रीड़ा प्रदर्शन कर भगवान की उपासना करते। इस प्रकार अवस्थित होकर एवं उद्यान पालक जिस तरह वृक्षों का लालन-पालन करता है उसी प्रकार अप्रमादी, पाँच धाय माताओं द्वारा लालित-पालित होकर वे क्रमशः बड़े होने लगे।

अंगुष्ठ चूसने की अवस्था पूर्ण होने पर द्वितीय अवस्था प्राप्त गृहवासी अर्हत् पकाये हुए अन्न का भोजन करते हैं किन्तु नाभिनन्दन भगवान उत्तर कुरु से देवताओं द्वारा लाए हुए कल्पवृक्ष का फल भोजन करते और क्षीर समुद्र का जल पान करते। व्यतीत काल की तरह बाल्यकाल पूर्णकर सूर्य जैसे दिन

के मध्य भाग में आ जाता है भगवान भी उसी प्रकार जिस समय सभी अवयव दृढ़ और पूर्ण हो जाते हैं ऐसे यौवन को प्राप्त हुए। यौवन प्राप्त होने पर भी प्रभु के दोनों चरण कमलों के मध्य भाग की तरह कोमल, लाल, ऊष्ण, कम्पन-रहित, स्वेदरहित और सम पदतल सम्पन्न थे। पदतल में चक्र का चिह्न था जो कि दुःखियों का दुःख छेदन करने के लिए अंकित हुआ था। तदतिरिक्त माला, अंकुश और ध्वज चिह्न लक्ष्मी रूपी हस्तिनी को सर्वदा स्थिर करने के लिए अंकित हुए थे। लक्ष्मी का लीला भवन तुल्य प्रभु के चरण तल में शंख और कुम्भ चिह्न थे और एड़ी पर स्वस्तिक चिह्न था। भगवान के पुष्ट गोलाकार और सर्पफण से उन्नत अंगुष्ठ पर वत्स की भाँति श्रीवत्स चिन्ह था। निवात दीप शिखा की भाँति भगवान की छिद्र रहित और सीधी अँगुलियाँ चरण रूप कमल-सी प्रतीत होती थी। इन अँगुलियों के नीचे नन्दावर्त चिन्ह शोभित था। उनका प्रतिरूप जब धरती पर पड़ता तो धर्म प्रतिष्ठा का कारणभूत होता। प्रभु की प्रत्येक अँगुलियों के पर्व में गम्भीर यव चिन्ह अंकित थे। उन्हें देखकर लगता जगतलक्ष्मी के साथ प्रभु का विवाह होगा इसलिए उनका वपन किया गया है। पृथु और गोलाकार एड़ियाँ ऐसे लगते मानों चरण-कमल के कन्द हैं। अंगुष्ठ और अँगुलियों के ऊपर के नख सर्प शिरःस्थित मणि की भाँति शोभित होते थे। चरणों के गूढ़ गुल्फ स्वर्ण कमल कलि की कर्णिका के गोलक की भाँति शोभा विस्तृत कर रहे थे। प्रभु के पदतल का उपविभाग कच्छप पृष्ठ की तरह क्रमशः उन्नत, जिसकी शिराएँ दिखायी नहीं पड़ती ऐसे, लोम रहित, स्निग्ध और कान्ति सम्पन्न था। पैरों का गौरवर्ण निम्न भाग अस्थि रुधिर से आवृत्त होने से पुष्ट, गोल और हरिणों के पैरों की शोभा को भी तिरष्कृत करनेवाला था। उनके घुटने मांसल और गोल थे। जंघाएँ कोमल, क्रमशः उन्नत और गोल थी। वे कदली स्तम्भ के विलास को धारण करती थीं। मुष्क हस्ती की भाँति गूढ़ और समस्थिति युक्त था। कारण अश्व की तरह कुलीन पुरुष का चिन्ह गूढ़ होता है।। उनका पुरुषांग ऐसा था जिसकी शिरा दिखाई नहीं पड़ती। वह न ऊँचा था न नीचा, न शिथिल न खूब छोटा न खूब मोटा। वह सरल था, कोमल था, लोमरहित और गोलाकार था। उनके कोशस्थित पंजर-शीत प्रदक्षिणावर्त्त शब्दमुक्ता को धारण करने वाले अबीभत्स और आवर्ताकार थे। प्रभु के पृष्ठ का निम्न भाग विशाल, पुष्ट, स्थूल और अत्यंत कठोर था और मध्यभाग सूक्ष्मता में वज्र के मध्य-भाग-सा था। नाभि नदी के आवर्त का विलास धारण करती थी। कुक्षि के दोनों भाग स्निग्ध, मांसल

कोमल, सरल और समान था। वक्षदेश स्वर्णशीला की तरह विशाल, उन्नत, श्रीवत्स चिन्ह अंकित, मानो लक्ष्मी की छोटी क्रीड़ा-वेदिका हो। उनके दोनों स्कन्ध वृषभ के कन्धों की भाँति दृढ़, पुष्ट और उन्नत थे। दोनों बगल अल्प रोमयुक्त, उन्नत गन्ध, स्वेद और मल रहित थे। उनके पुष्ट और हस्तरूपी फणों के कुण्डों से युक्त बाहु घुटनों तक विलम्बित थे। वे ऐसे लगते मानों वे चंचला लक्ष्मी को वशीभूत करने के नाग-पाश हैं। और दोनों हाथ के करतल थे नवीन आम्र पल्लव की भाँति लाल, कुछ काम नहीं करने पर भी कठोर, स्वेदरहित, छिद्ररहित और ईषत् ऊष्ण। पैरों की तरह उनके हाथों में भी दण्ड, चक्र, धनुष, मत्स, श्रीवत्स, वज्र, अंकुश, ध्वज, कमल, चामर, छत्र, शंख, कुम्भ, समुद्र, मन्दिर, मकर, ऋषभ, सिंह, अश्व, रथ, स्वस्तिक, दिग्गज, प्रासाद तोरण, दीप आदि चिह्न अंकित थे। उनके अंगुष्ठ और अंगुलियाँ लोहित हस्त से निकलने के कारण लोहित और सरल थे। वे प्रान्त भाग में माणिक्य फूल के कल्पवृक्ष के अंकुर की भाँति प्रतीत होते थे। अंगूठे के पर्व भाग में यशरूपी उत्तम अश्व को पुष्ट करने के लिए यवचिह्न स्पष्टतः गोचर होते थे। अंगुलियों के ऊपरी भागों में दक्षिणावर्त चिन्ह थे। उन्होंने सर्व सम्पत्ति द्योतक दक्षिणावर्त के शंख का रूप धारण कर रखा था। उनके कर कमलों के मूल भाग में तीन रेखाएँ थीं। वे ऐसी लगतीं मानों वे त्रिलोक उद्धार करने के लिए निर्मित हुई हों। उनका गोलाकार, अदीर्घ त्रिरेखा से पवित्र, गम्भीर ध्वनिकारी कण्ठ शंख की समानता धारण कर रहा था। निर्मल, वर्तुल और कान्ति की तरंग युक्त मुख कलंक रहित द्वितीय पूर्ण चन्द्र-सा प्रतीत हो रहा था। दोनों गण्ड कोमल, स्निग्ध और मांसल थे, वे एक साथ अवस्थानकारी वाणी और लक्ष्मी के दो दर्पण तुल्य थे। भीतर के आवर्त में सुन्दर, स्कन्ध पर्यन्त लम्बित कर्णद्वय मुख की कान्ति रूप समुद्र के तट पर दो शुक्ति से लगते थे। ओष्ठ बिम्ब फल की भाँति लाल थे। पूर्ण दन्त पंक्ति कुन्दकलि के सहोदर तुल्य थी। नासिका क्रमशः विस्तृत और वंश तुल्य थी। उनका चिबुक पुष्ट, गोलाकार कोमल और समान था और वहाँ उत्पन्न दाढ़ी के बाल काले, सघन, स्निग्ध और कोमल थे। भगवान की जीभ नवीन कल्पवृक्ष के प्रवाल तुल्य लाल, कोमल, अनतिस्थूल और द्वादशांगी का अर्थ कथनकारी थी। उनकी अक्षि भीतर की ओर श्याम और श्वेत और किनारे पर लाल थी इससे नीलमणि, स्फटिकमणि और शोणमणि द्वारा निर्मित हो ऐसी लगती थी। कर्णपर्यन्त विस्तृत और काजल-सी कृष्ण भ्रू युक्त आँखें जैसे भ्रमर युक्त कमल-सी लगती थीं। उनकी श्याम और तिर्यक भ्रू दृष्टि रूप जलाशय के तट पर उद्गत लता की शोभा

को धारण करती थी। मांसल, गोल, कठिन, कोमल और सम ललाट अष्टमी के चन्द्रमा-सा शोभा पा रहा था। ललाट का ऊर्ध्व भाग उन्नत था। वह उकटाए हुए छाते-सा लगता था। जगदीश्वरत्व सूचक प्रभु की मौलि छत्र पर विराजित गोल और उच्च मुकुट कलश की शोभा को धारण कर रही थी और अंचित कोमल, स्निग्ध, भ्रमरतुल्य कृष्ण केश यमुना तरंग-से प्रतीत हो रहे थे। प्रभु की देह गोरोचन के गर्भ के समान श्वेत, स्निग्ध और स्वच्छ त्वक मानो सुवर्ण रस से लेपित होकर सुशोभित हो रही थी। कोमल भ्रमर तुल्य श्याम और अपूर्व कमल तन्तु समान रोमावलि उस देह की शोभा में अभिवृद्धि कर रही थी।

इस प्रकार प्रभु अनेक प्रकार के असाधारण लक्षणों से युक्त होकर रत्न से भरा रत्नाकर की भाँति किसके सेव्य नहीं थे? अर्थात् सुर-असुर-मानव सभी के सेव्य थे। इन्द्र उन्हें अपने हाथों का सहारा देते। यक्षगण चामर डुलाते और असंख्य देवता 'चिरंजीवी बनो, चिरंजीवी बनो' कहते हुए उन्हें घेरे रहते। फिर भी प्रभु के मन में जरा भी अभिमान नहीं था। वे यथासुख विहार करते। कितनी बार वे इन्द्र की गोद में पैर रखकर चमरेन्द्र के गोदरूपी पलंग पर अपनी देह का ऊर्ध्वभाग स्थिर कर देवताओं द्वारा लाए हुए आसन पर बैठकर दोनों हाथों में वस्त्र लिए खड़ी अप्सराओं द्वारा सेवित होकर अनासक्त भाव से दिव्य नृत्य गीत देखते।

एकदिन एक युगल तालवृक्ष के नीचे बालकोचित क्रीड़ा कर रहे थे तभी एक भारी तालफल उनमें पुरुष के सिर पर आ पड़ा। काकतालीय नय से वह पुरुष उसी समय अकाल मृत्यु को प्राप्त हुआ। ऐसी घटना प्रथम बार घटी थी। अल्पकषायी होने के कारण उस पुरुष ने स्वर्ग गमन किया। कारण रूई हलकी होने से आकाश की ओर ही जाती है। इसके पूर्व युगलिकगण मृतदेह को उठाकर उसी प्रकार समुद्र में फेंक देते थे जैसे बड़े-बड़े पक्षीगण अपने नीड़ों के तिनकों को गिरा देते हैं। किन्तु उस समय ऐसी बात नहीं थी। कारण अवसर्पिणी काल के प्रभाव से सब कुछ परिवर्तित हो रहा था। अतः उसकी मृत देह वहीं पड़ी रही। उस युगल की स्त्री उस समय बालिका थी। स्वभावतः वह मुग्धा थी। अपने साथी बालक की मृत्यु हो जाने से विक्रय के पश्चात् बचे-खुचे द्रव्य की तरह वह चंचलाक्षी वहीं बैठी रही। उसके माता-पिता उसे वहाँ से ले जाकर उसका पालन-पोषण करने लगे। उन्होंने उसका नाम सुनन्दा रखा। कुछ दिन पश्चात् सुनन्दा के माता-पिता की मृत्यु हो गयी। कारण सन्तान उत्पन्न करने के पश्चात् युगलिक

अल्पदिन ही जीवित रहते थे। अकेली होकर वह क्या करे वह ज्ञात न होने से वह यूथ-भ्रष्टा हरिणी की तरह इधर-उधर विचरण करने लगी। वह जब सरल अँगुली रूपी पत्र वाले पाँव धरती पर रखती तो लगता वह धरती पर विकसित कमल स्थापित कर रही है। उसकी दोनों जंघाएँ कामदेव निर्मित सुवर्ण धनुष-सी प्रतीत होतीं। क्रमशः विशाल और गोल पैरों का निम्न भाग हाथी की सूँड़-सा प्रतीत होता। चलने के समय उसके भारी नितम्ब कामदेव रूपी जुआरी द्वारा निक्षिप्त स्वर्ण गुटिका-सा लगता। मुट्ठी में आ जाए ऐसी और कामदेव के आकर्षण के समान कमर से और कामदेव के क्रीड़ावापि के तुल्य नाभि से वह बहुत शोभती थी। उसके उदर में त्रिवली रूपी तरंगें थीं। उनसे वह अपने रूप द्वारा तीन लोकों को जीतकर तीन जय रेखाओं को धारण कर ली हों ऐसी मालूम होती थी। उसके स्तन कामदेव के क्रीड़ा पर्वत से थे। उसकी दोनों भुज लताएँ रतिपति के झूले की दोनों ओर की रस्सियों से लगते। उसके तीन रेखा युक्त कण्ठ शंख की शोभा को भी हरण करते। ओष्ठ पक्क बिम्बफल की शोभा को पराभव करते। ओष्ठ रूपी सुक्ति के भीतर के मुक्ताफल रूपी दन्त पंक्ति और नेत्र रूपी कमल की नाल सी नासिका से वह बहुत सुन्दर प्रतीत हो रही थी। उसके दोनों कपोल ललाट की स्पर्द्धा कर अर्द्धचन्द्र की शोभा को हरण कर रहे थे। उसके सुन्दर केश मुख-रूप कमललीन नील भ्रमर से लग रहे थे। समस्त अंग में सुन्दर और पुण्य लावण्य रूपी अमृत-नदी-सी वह कन्या वन में इधर-उधर भ्रमण करने के समय वनदेवी-सी लगती। उस एकाकी विचरती हुई मुग्धा को देखकर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ कुछ युगलिक उसे नाभिराज के पास ले गए। नाभिराज ने यह कन्या ऋषभ की धर्मपत्नी बने ऐसा कहकर नेत्र रूप कुमुद की चन्द्रिका तुल्य उस कन्या को स्वीकार कर लिया।

तत्पश्चात् एक दिन सौधर्मेन्द्र अवधिज्ञान से प्रभु का विवाह समय ज्ञात कर अयोध्या आए और जगत्पति के चरणों में प्रणाम कर उनके सम्मुख खड़े होकर भृत्य की भाँति हाथ जोड़कर विनती करने लगे, "हे नाथ, जो अज्ञानी है वह यदि ज्ञान-निधि समान प्रभु को अपने विचार और बुद्धि से किसी कार्य में प्रवृत्त होने को कहे तो वह परिहास का पात्र ही होगा। फिर भी स्वामी अपने भृत्य को स्नेह दृष्टि से देखते हैं तभी तो वह बहुत बार स्वच्छन्दता पूर्वक कुछ बोल जाता है। उनमें जो स्वामी के अभिप्राय को ज्ञातकर बोलता है वही सच्चे सेवक के रूप में अभिहित होता है। किन्तु, हे नाथ, मैं आपके अभिप्राय को ज्ञात न कर बोलता हूँ अतः आप अप्रसन्न न हों। मैं जानता

हूँ आप गर्भावास से ही वीतरागी हैं एवं अन्य पुरुषार्थ की इच्छा नहीं रहने से चतुर्थ पुरुषार्थ के प्रयासी हैं। फिर भी हे स्वामी, मोक्षमार्ग की भाँति व्यवहार मार्ग भी आप ही प्रकट करेंगे। इसलिए लोक व्यवहार प्रारम्भ करने हेतु आपका विवाह महोत्सव करने की इच्छा है। हे प्रभु, आप प्रसन्न होकर मुझे अनुमति दें। भुवन-भूषण तुल्य रूपवती सुमंगला और सुनन्दा अब विवाह योग्य हो गयी हैं।'

उसी समय प्रभु ने भी अवधिज्ञान से यह जानकर कि तिरासी लाख पूर्व दृढ़ भोग कर्म मुझे भोग करने होंगे सिर झुकाकर अपनी स्वीकृति प्रदान कर सन्ध्याकाल की भाँति अधोमुख हो गए।

स्वामी के मनोभाव को जानकर इन्द्र ने विवाह कर्म प्रारम्भ करने के लिए देवताओं को वहाँ बुलवाया। इन्द्र की आज्ञा प्राप्त कर आभियोगिक देवतागण ने वहाँ एक सुन्दर मण्डप निर्माण किया, उसे देखकर लगता जैसे सुधर्मा सभा का अनुज हो। उसमें बनाए गए सुवर्ण माणिक्य और रौप्य के स्तम्भ मेरु, रोहणाचल और वैताढ्य पर्वत के शिखर से शोभित हो रहे थे। उसके ऊपर रखे हुए स्वर्णमय प्रकाशशाली कलश चक्रवर्ती के कांकणी रत्न-मण्डलों के समान शोभा देने लगे। वहाँ निर्मित वेदी विस्तृत किरणजाल में अन्य तेज को सहने में असमर्थ सूर्य किरणों का आभास दे रही थी। उस मण्डप में प्रवेशकारी मणिमय शिलाओं की दीवारों पर प्रतिबिम्बित होकर वृहत् परिवार सम्पन्न से लग रहे थे। रत्न-स्तम्भों पर स्थित पुत्तलिकाएँ नृत्यकारिणी नर्तकियों की भाँति प्रतिभात हो रही थीं। उस मण्डप के प्रत्येक ओर कल्पवृक्ष के तोरण बनाए गए थे। वे कामदेव के धनुष से शोभित हो रहे थे। स्फटिक द्वार की शाखा पर नीलमणि का तोरण बनाया गया था जो कि शरत्कालीन मेघमाला में उड़ती हुई शुक पंक्ति-सा सुन्दर लग रहा था। कुछ स्थान स्फटिक मणि से निर्मित हुए थे। वहाँ नियत किरण पड़ने के कारण वे अमृत की क्रीड़ा वापी से शोभित थे। कुछ स्थान पर पद्मराग मणि की शिला की किरण प्रसारित हो रही थी। इसलिए वह मण्डप कुसुम्बी और विस्तृत दिव्य वस्त्र का संचयक लग रहा था। अनेक जगहों पर नीलमणि शिला की अत्यन्त मनोहर किरणांकुर पड़ने से मण्डप पुनः रोपित मांगलिक भवांकुर युक्त-सा लगता था। कुछ स्थान पर मरकतमय पृथ्वी की किरण निरन्तर पड़ रही थी इससे वह वहाँ लाए नील और मंगलमय वंश की शंका उत्पन्न कर रहा था। उस मण्डप के ऊपर जो सफेद दिव्य वस्त्र का चँदोवा बाँधा गया था वह ऐसा लगता था मानो आकाश गंगा ही चंदोवे के

रूप में वहाँ के कौतुक को देखने के लिए समुपस्थित हुई है। चंदोवे के चारों ओर के स्तम्भ पर जो मुक्ता मालाएँ लटकायी गयी थीं वे स्फटिक के हास्य-सी प्रतीत होती थीं। मण्डप के मध्य में देवांगनाओं ने रति के निधान रूप रत्न कलशों की चतुर आकाशचुम्बी पंक्तियाँ स्थापित की थीं। उन्हीं चार पंक्तियों के कुम्भ को स्थिर रखने में सहायकारी वंश विश्व को सहायतादानकारी स्वामी के वंश की वृद्धि सूचित करते हुए शोभा दे रहे थे।

उसी समय, 'हे रम्भा, माल्य रचना करो', 'हे उर्वशी, दुर्वाघास लाओ', 'हे घृताचि, वर को अर्घ देने के लिए घी दही आदि लाओ', 'हे मंजुघोषा, सखियों द्वारा धवल मंगल अच्छी तरह गवाओ', 'हे सुगन्धे, तुम सुगन्धित द्रव्य तैयार करो', 'हे तिलोत्तमे, दरवाजे पर सुन्दर स्वस्तिक अंकित करो', 'हे मैना, तुम अभ्यागत व्यक्तियों को सुन्दर आलाप गाकर सम्मानित करो', 'हे सुकेशी, वरवधू के लिए केशाभरण बनाओ', 'हे सहजन्या, वरयात्री रूप में आगत पुरुषों के लिए स्थान निरूपण करो', 'हे चित्रलेखा, मातृभुवन में विचित्र चित्र अंकित करो', 'हे पूर्णिमा, तुम पूर्णपात्र शीघ्र तैयार करो', 'हे पुंडरिके, तुम पुण्डरीक से पूर्णकुम्भ सजाओ', 'हे अम्लोचे, तुम वर के लिए चौकी योग्यस्थान पर रखो', 'हे हंसपादि, तुम वर-वधू की पादुकाएँ रखो', 'हे पुंजिकास्थला, तुम वेदिकाओं को गोमए से शीघ्र लेपन करो', 'हे रामा, तुम कहाँ जा रही हो?', 'हे हेमा, तुम सोना की ओर टकटकी क्यों लगाए हो?', 'हे ऋतुस्थला, तू पागलों की तरह चुप क्यों बैठी है?', 'हे मारिचि, तुम, क्या सोच रही हो?', 'हे सुमुखी, तुमने मुँह क्यों फुला रखा है?', 'हे गान्धर्वी, तुम आगे क्यों नहीं आ रही हो?' 'हे दिव्या, तुम क्यों इधर-उधर घूम रही हो? अब लग्न का समय हो गया है। सभी अपने-अपने विवाहोचित कार्य शीघ्र पूर्ण करो।' इस भाँति अप्सराएँ एक दूसरे का नाम ले-लेकर बोल रही थीं। इससे वहाँ कोलाहल-सा मच गया था।

कुछ अप्सराओं ने सुनन्दा और सुमंगला को मंगल स्नान करवाने के लिए चौकी पर बैठाया। मधुर धवल मंगल गीत गाते हुए प्रथम उन्होंने उनके समस्त शरीर में सुगन्धित तेल मर्दन किया। फिर जिनकी पद रज से पृथ्वी पवित्र हुई है इस प्रकार उन दोनों कन्याओं के उबटन लगाया। उनके दोनों हाथ, दोनों घुटनों, दोनों स्कन्ध और मस्तक पर नो श्याम तिलक बनाए। वे उनकी देह पर नो अमृत कुण्ड तुल्य प्रतिभाषित हो रहे थे। तकली में लपेटे कुसुम्भी सूत लेकर देवियों के दाएँ-बाएँ अंगों का उन्होंने स्पर्श किया मानों उनकी देह समचतुरस्र संस्थान वाली है या नहीं अनुभूत किया। इस प्रकार दासियों की तरह अप्सराओं ने गौरवर्णा उन बालिकाओं के बदन में उनकी चपलता दूर करने के लिए

उबटन लगाया। फिर आनन्द से उत्फुल्लमना उनलोगों ने उनके शरीर में एक और विशेष प्रकार का उबटन लगाया। फिर वे कुलदेवी की तरह उनको अन्य आसनों पर बैठाकर सुवर्ण कलशों में भरे जल से स्नान कराया। सुगन्धित गैरिक वस्त्र से उनका शरीर पोंछा, कोमल रेशमी वस्त्र से उनके केश आवृत्त किए फिर रेशमी वस्त्र पहनाकर उन्हें उनके आसनों पर बैठाया। उनके केशों से जलकण इस प्रकार झर रहे थे मानों मोतियों की वर्षा हो रही हो। स्निग्ध धूम रूपी लता में जिनकी शोभा बढ़ती है ऐसे उनके सामान्य भींगे केशों को दिव्य धूप से सुगन्धित किया। जिस प्रकार सुवर्ण पर गेरु का लेप होता है वैसे ही दोनों स्त्री रत्नों के शरीर में सुगन्धित अंगराग का लेपन किया। उनके गले में, हाथों के अग्रभाग में, स्तनों पर, कपोलों पर पत्रावली अंकित की। वे कामदेव की प्रशस्ति-सी प्रतीत हो रही थीं। कामदेव के अवस्थान के लिए नवीन मण्डल की भाँति उनके ललाट पर चन्दन के सुन्दर तिलक की रचना की। उनके नेत्रों के नील कमल वन में मानो भ्रमर-सा कज्जल सज्जित किया। उनकी कबरी विकसित कुसुमदाम से ग्रथित की। वे ऐसे लग रहे थे मानो कामदेव ने अपने शस्त्रों को रखने के लिए अस्त्रागार निर्माण किया है। चन्द्रकिरण का भी तिरस्कार करने वाले जरी खचित दीर्घांचल युक्त विवाह वस्त्र उन्हें पहनाए। पूर्व और पश्चिम दिशा के मस्तक पर जैसे सूर्य और चन्द्र रहते हैं वैसे ही उनके मस्तक पर देदीप्यमान मुकुट रखा। उनके कानों में मणिमय अवतंश पहनाए। वे अपनी शोभा से रत्नांकुरित मेरुपर्वत के समस्त अभिमान को चूर कर रही थीं। कर्णलताओं में नवीन पुष्पमंजरी को भी विडम्बित करने वाले मुक्ता के सुन्दर कुण्डल पहनाए। कण्ठ में विचित्र माणिक्य कान्ति से आकाश को प्रकाशित करने वाले संक्षेप किए हुए इन्द्रधनुष की लक्ष्मी की शोभा को अपहरणकारी पदक पहराए। भुजाओं में कामदेव के धनुष में बंधा वीरपट से सुशोभित रत्नमण्डित बाजूबन्द पहनाए। उनके स्तन तटों पर उत्थित अवनमित नदी का भ्रम उत्पन्नकारी हार पहनाया। उनके हाथों में मणिमय कंगन पहनाए। वे जललता के नीचे सुशोभित जल के आलवाल से लग रहे थे। जिसके घुंघरू ध्वनित हो रहे हैं ऐसी मणिमय कटिमेखला उनके कटि प्रदेश पर स्थापित की। इससे वे रतिदेवी की मंगल पाठिका-सी लग रही थी। उनके चरणों में रत्नमय नूपुर पहनाए, जिसकी झंकार मानो उनका गुणगान कर रही है ऐसा प्रतीत होता था। देवियों ने इस प्रकार दोनों को सजाया और उनको मातृभुवन ले जाकर स्वर्णासन पर बैठा दिया। [क्रमशः

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

अनेकान्त ॥ अप्रैल-जून १९८२

इस अंक में है 'भारत के बाहर जैन धर्म का प्रसार-प्रचार' (डा० ज्योति प्रसाद जैन), 'जीवन्धर चम्पू में आकिंचन्य' (राका जैन), 'सम्यक्त्व कौमुदी सम्बन्धी अन्य रचनाएँ एवं विशेष ज्ञातव्य' (अगर चन्द नाहटा), 'अपभ्रंश काव्यों में सामाजिक चित्रण' (डा० राजाराम जैन), 'जैन दर्शन में अनेकान्त-वाद' (अशोक कुमार जैन), 'वर्तमान जीवन में वीतरागता की उपयोगिता' (पुखराज जैन) ।

अमर भारती ॥ जुलाई १९८२

उपाध्याय श्री अमर मुनि के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'मुनिवरों के व्याख्यान' (उत्तम चन्द भा० कोठारी), 'जैन संस्थाओं में प्राणवत्ता क्यों नहीं ?' (उपाध्याय अमर मुनि), 'साधु मर्यादा क्या और कितनी ?' (सौभाग्य-मल जैन), 'कस्मै देवाय हविषा विधेम ?' (श्री कीर्त्तिमुनि) ।

कथालोक ॥ जुलाई १९८२

इस अंक में है जैन कथा 'हार की चोरी' (रेणु बाँठिया), 'पण्डित दयानन्द' (केवल मुनि), 'धर्म की दृढ़ श्रद्धा' (अगर चन्द नाहटा) ।

कुशल-निर्देश ॥ जुलाई १९८२

इस अंक है 'श्री सहजानन्दघन जी महाराज का मुनि श्री आनन्दघन जी विजय को दिया पत्र' (अनु० भँवरलाल नाहटा), 'योगीराज श्री विजय शान्ति सूरि जी' (कंचन जैन), 'आभड़ शाह' (मु० धीरजलाल टोकरसी शाह, अनु० भँवरलाल नाहटा), 'दिव्यहार' (रेणु बांठिया), 'भारत में जैन विश्वविद्यालय की आवश्यकता' (माणक चन्द नाहर) ।

तीर्थंकर ॥ जुलाई १९८२

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'बातचीत' (श्रीमती सरयू दफ्तरी/ डा० नेमीचन्द जैन), 'पारस्परिक संघर्ष क्यों, कैसे, किसलिए ?' (डा० सागरमल जैन), 'क्या हो सकते हैं हम सब एक' (मुनि रूपचन्द्र), 'समणसुत्तं चयनिका' (डा० कमलचन्द सोगानी) ।

श्रमण ॥ जुलाई १९८२

इस अंक में है 'प्रतिक्रिया है दुःख' (युवाचार्य महाप्राज्ञ), 'जैन धर्म में मोक्ष का स्वरूप' (विनोद कुमार तिवारी), 'मध्यप्रदेश के गुना जिले का जैन पुरातत्व' (शिव प्रसाद) ।

Vol. VI No. 4 : Titthayara : August 1982
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

B

Hewlett's Mixture
for
Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) PVT. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700001